यह मेरी कवितायें हैं...

तथा

अन्य रचनायें

कवींद्र रवींद्र की चुनी हुई बहुवर्णी
कविताओं का हिन्दी रूपान्तर

रूपांतर
गोपीकृष्ण गोपेश



किताब महल (होलसेल डिवीजन) प्राइवेट लिमिटेड
रजिस्टर्ड आफिस : ५६ ए. जीरो रोड, इलाहाबाद

१९६६

प्रथम संस्करण, १९६६

प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद।

मुद्रक : ईगल ऑफ़सेट प्रिंटर्स, १५, थॉर्नहिल रोड, इलाहाबाद।


सादर—
संत-कवि श्री सुमित्रानंदन पंत—
को
परम आदर से—

यह हिन्दी-रूपान्तर
कवीन्द्र-रवींद्र की पुण्य-स्मृति
मे मेरी विनीत श्रद्धाजलि
है ।
'दो शब्द' के लिए
'जिज्जी' (श्रीमती महादेवी वर्मा)
के सम्मुख श्रद्धावनत हूँ !

12026
29/12/2009

दो शब्द -

अनुवाद और विशेषतः काव्यानुवाद ऐसा साहित्यकर्म है जो सर्जनात्मक होते हुए भी साहित्य के समान मुक्त नही है।

कवि जिस वातावरण मे जिन अनुभूतियों को व्यक्त करता है, उन्हें बनाने के लिए उसे आयास नहीं करना पड़ता है, परन्तु, अनुवादक को उस अभिव्यक्ति को दूसरी भाषा मे व्यक्त करने के लिए, वातावरण-विशेष के साथ अनुभूति-विशेष को पुनः अवतरित करने मे प्रयत्न करना पड़ता है।

भाषा अपनी दोहरी स्थिति—ध्वनि तथा लिपि—मे अपनी धरती के साथ एक जटिल तथा अविच्छिन्न सम्बन्ध मे बँधी रहती है। भिन्न भू-खण्डों मे जन्म और विकास पाने वाले मानवसमूहो की भाषाओ मे ध्वनि ही नहीं, संकेत, प्रतीक, अर्थवत्ता आदि की दृष्टि मे भी भिन्नता रहती है। वस्तुतः मानव-मनोजगत् में अनन्त बिम्ब-प्रतिबिम्बों का एक रहस्यमय छाया-जगत् प्रसुप्त रहता है, जो परिचित ध्वनि, अर्थ या संकेत-विशेष से जागकर प्रत्यक्ष ही उठता है। परन्तु ऐसा जागरण भाषा के अपरिचय मे सम्भव नही होता।

उदाहरणार्थ—भारतीय-काव्य, कला तथा सौन्दर्यबोध मे 'कमल' शब्द को एक सास्कृतिक वैशिष्ट्य प्राप्त हो गया है; अतः उक्त शब्द के उच्चारण मात्र से एक भारतीय व्यक्ति के मनोजगत् मे जो बिम्बपरम्परा सजीव हो उठती है, उसकी अन्य देशवासी के मनोजगत् मे कोई स्थिति नही है।

साहित्यकार अपनी भाषा की प्रभविष्णुता के सम्बन्ध में आश्वस्त रहता है, परन्तु अनुवादक के लिए ऐसा आत्मविश्वास सहज नही, क्योकि उसे एक भाषा में ढले-गढ़े शब्द-सकेतो को अन्य भाषा के माध्यम से ऐसे मनोजगत् में ले जाना पडता है, जहाँ वे अपरिचित है। कभी-कभी वे बिम्ब दूरागत यात्री के समान इतने थके और धूल-धूसरित रूप में उपस्थित होते है कि उन्हें द्वार से ही लौटा दिया जाता है, और कभी-कभी अनधिकार प्रवेश के कारण अन्य मनोजगत् मे उपेक्षित ही रह जाते है। दूसरे शब्दों मे यह मानो नववधू का गृह-प्रवेश है। पूर्व गृह के संस्कार जब नवीन गृह के संस्कारो मे इस प्रकार घुल-मिल जाते हैं कि उन्हे कोई पृथक् नहीं कर पाता, तभी उसे नये गृह मे अधिकार प्राप्त होता है। उसके पूर्व वह नवागन्तुका, अतः, प्राप्य अधिकारों के उपयोग की अधिकारिणी नही मानी जाती।

अनुवाद भी अन्य भाषा के संस्कारो को सफलतापूर्वक आत्मसात् करके ही कृतार्थता प्राप्त करता है। उसकी मूल आत्मा का यह नया अवतरण है, जिसकी सार्थकता आत्मा के न बदलने तथा शरीर के नवीन रहने पर ही निर्भर ही रहेगी।

प्रस्तुत अनुवाद विश्वात्मा के मृत्युञ्जयी शिल्पी कवीन्द्र-रवीन्द्र की चौवालिस कविताओ का हिन्दी-रूपान्तर है।

रवीन्द्र सार्वभौम कवि है तथा उनकी रचनाओं ने विश्व भर की भाषाओं को समृद्ध किया है। साहित्य के विषय मे उनका कथन .

'यदि हम साहित्य को देश, काल और पात्र के अन्दर छोटा करके देखें तो हम साहित्य को यथार्थ रीति से नही देख सकते। हम यदि इस तथ्य को समझ लें कि साहित्य मे विश्व-मानव ही अपने को प्रकाशित कर रहा है, तो हम साहित्य के भीतर देखने योग्य वस्तु को देख सकेंगे।'

उनके साहित्य की सबसे अधिक पूर्ण व्याख्या है। उनका काव्य विश्व-मानव के हर्ष-विषाद, सघर्ष-जय का उद्गीथ है, अतः वह कही आँसुओं से गीला और कही हास से उद्भासित है; कही वंशी की लय है और कही पाञ्च-जन्य का उद्घोष है। विराट ही विविध और सामान्य हो सकता है।

भाई गोपेश स्वयं कवि है, अतः रवीन्द्र के प्रगीत-मुक्तको के भाव को आत्मसात् करके ही उन्होने भाषान्तरित किया है। उनके अनुवाद में मूल का प्रवाह और हिन्दी के तट है। रवीन्द्र के काव्य की वह साधारणता जो बड़े से बड़े चमत्कार को चुनौती देती है, इस अनुवाद मे अक्षुण्ण है।

महादेवी

———→



संशोधन—

पृष्ठ ३६—नीचे से तीसरी पंक्ति मे—'गहरायेगा'
" ३८—ऊपर से चौथी पंक्ति में—"फैलती ही आती है"—
" ६०— ,, ,, तीसरी पंक्ति मे—'कादम्ब'
" ७६— ,, ,, सातवीं पंक्ति मे—'धरती का हृदय'...



यह मेरी कविताएँ हैं—

मैं इन्हें इस कॉपी में भर कर तुम्हारे पास भेज रहा हूं;
और, इन कविताओं से भरी
मेरी यह कॉपी ऐसी ही है
जैसे कि चिड़ियों से भरा एक पिंजड़ा

अब तक
नक्षत्र-मण्डलों के चारों ओर के
नीलम-फैलाव से हो कर
यह रचनायें गुजरती रही हैं,
परन्तु वह नीलम फैलाव
अब बाहर रह गया है,
पीछे छूट गया है।

तारे रात के अन्तर से अलगाये जा सकते हैं;



उन्हें एक सूत्र में पिरोया जा सकता है;
और, उनसे एक गझिन हार भी
तैयार किया जा सकता है—
यही नहीं, स्वर्गलोक के
पास-पड़ोस का कोई बड़ा जौहरी
उनकी भारी क़ीमत भी अदा कर सकता है;
परन्तु,
परन्तु, देवताओं को
वह हार
कुछ हल्का-हल्का सा,
कुछ खोखला-खोखला सा लगेगा,
क्योंकि इस तरह उसकी स्वर्गीयता नष्ट हो जायगी,
और उस हार के किसी तारे में
उन्हें उस अलौकिक विभूति की झलक न मिलेगी,
जो आज तक,
परिभाषा की सीमा में
बाँधी नहीं जा सकी है।

पानी की गहराई से
ऊपर उभरने वाली
किसी उड़नी—मछली की तरह
यदि कोई गीत
समय की गहराई से उभरकर ऊपर आये,
तो क्या मछली की भाँति ही
तुम उसे भी फँसाना शुरू करोगे ?
और, शीशे के एक पात्र में रख कर
उसका भी प्रदर्शन करना पसंद करोगे
कि कितने ही दूसरे बन्दियों के साथ
वह भी रहे !

एक ज़माना बीत गया—



एक युग था कि कवि अपने मन का राजा होता था—
उसके पास मनमाना अवकाश होता था—
और, हर आये दिन
अपने उदार-हृदय आश्रयदाता राजा के सामने
वह अपनी कविताओं का पाठ किया करता था—
वह समय था
कि अवकाश के गूंजोंभरे क्षण
काले मौन से कजराये न थे;
और, वे क्षण थे
कि संगत-असंगत
अपनी स्वाभाविक गति से
उनके प्राणों में बजते थे—
उस समय तक कविताओं के पद
वर्ण-मालाओं के कसे-कसाये
साँचे न बने थे
कि बिना सोचे-समझे
चुपचाप
समझ के गले के नीचे उतार लिये जायें—

पर, आज...
आज छापाखाना हमारे सामने आ गया है;
और, कभी के
अपने सुननेवालों के कानों में रस घोलनेवाले
गीत आज बंदी बन चुके हैं।
उफ़, वे बंदी गुलामों की सी पंक्तियों में
अपने आलोचक-अधिकारियों की
कड़ी निगाह के सामने खड़े हुए हैं;
और, उन्हें काग़ज़ों की स्वर-ध्वनि रहित
सफ़ेदी में देशनिकाला दे दिया गया है!

जिनके अधरों पर



कभी चिरन्तन अपने अधर रखता था,
वे आज
प्रकाशकों के बाजार में भूल-भटक गये हैं,
क्योंकि यह
शोरगुल
और
दौड़धूप
की उतावली का अधीर-युग है।
और,
आज
गीत की देवी को
बसों और ट्रामों पर
सवार होकर
हृदय के चौराहों तक पहुँचना पड़ता है!

मैं एक ठण्डी सांस लेता हूँ
और कामना करता हूँ कि काश—
मैं कालिदास के स्वर्ण-युग में
जीता-जागता;
और, तुम होते...., खैर....
व्यर्थ के दिवा-स्वप्नों में उलझने से क्या?
अब मुझसे किसी तरह की कोई आशा नहीं है।
मैं वह कालिदास हूँ जो बहुत विलम्ब
से दुनिया में आया है—
मैं छापेखाने के व्यस्त-युग में पैदा हुआ हूँ,
और,
तुम....तुम बिल्कुल आधुनिक हो।

तुम अपनी आराम कुर्सी पर झुके हुए
मेरी कविताओं के पृष्ठ पर पृष्ठ
इस तरह उलटते जाते हो

री कविताएँ हैं : कवीन्द्र रवीन्द्र



सुबह का समय है,

और आज छोटे-छोटे गीत और छोटी-छोटी बातें
मेरे दिमाग में आ रही हैं।

लगता है कि मैं एक नाव पर बहता चला जा रहा हूँ
बहता चला जा रहा हूँ और दरिया के दोनों
किनारों पर दुनिया है।
लगता है कि हर दृश्य एक आह भरता है और
आगे बढ़ जाता है कि लो, मैं चला, विदा!
दुनिया के सुख-दुख, भाई-बहिन की तरह,
दूर से ही मेरे चेहरे की ओर बड़ी
दर्दभरी आँखों से
देखते हैं—
सुख और स्नेह से भरा प्यार अपनी कुटिया
के कोने से झाँकता है, और मुझ पर एक

निगाह डालता हुआ मेरे सामने से
गुज़र जाता है।

मैं बहुत ललक कर
अपने हृदय की खिड़की से
दुनिया के दिल पर निगाहें डालता हूँ,
और,
अनुभव करता हूँ कि
दुनिया हजार बुरी हो,
और, दुनिया हजार भली हो,
पर, दुनिया बहुत प्यारी है,
और हमसे
हमारे प्यार की माँग करती है !





मुझे अपनी माँ का स्मरण नहीं है—
केवल कभी-कभी मुझे लगता है कि
मेरे खेल के समय
एक लय मेरे खिलौनों पर मँडराती है—
यह लय प्रायः किसी ऐसे एक गीत की होती है
जो मेरी माँ मुझे झूला झुलाते समय
गुनगुनाया करती थी !

मुझे अपनी माँ का स्मरण नहीं है
फिर भी पतझर के दिनों में
जब अलस्सवेरे
शिउली के फूलों की सुगन्धि हवा में
लहरें लेती है
तो मन्दिर से प्रातःकाल की प्रार्थना का सौरभ
मेरे पास ऐसे आता है

जैसे कि वह मेरी माँ की महक हो!



मुझे अपनी माँ का स्मरण नहीं है—
केवल इतना है कि
अपने शयन-कक्ष की खिड़की से
जब मैं दूर आसमान की नीलिमा
पर नज़र डालता हूँ
तो मुझे लगता है कि
मेरी माँ की दृष्टि की शान्त स्थिरता,
मेरे चेहरे पर ममता का तेज बिखेर कर,
सारे आसमान में फैल गयी है!



यदि प्यार में पीड़ा के सिवा और कुछ नहीं है,

तो यह प्यार—यह प्यार आखिर क्यों ?
कितनी बुद्धिहीनता है कि तुम
उससे उसके हृदय की माँग करो
क्योंकि तुम उसे
अपना हृदय समर्पित कर चुके हो !
क्यों है कि कामना रक्त में झुलसती रहे,
पागलपन आँखों में
चमक-चमक उठता रहे,
और तुम एक रेगिस्तान के चारों ओर
चक्कर काटते रहो—
आखिर क्यों ?

सच है
कि जो अपने आपको पा लेता है



वह संसार में किसी के पीछे नहीं दौड़ता—
वह किसी के लिए नहीं ललकता—
वसन्त का मधुर-शीतल पवन
उसकी सांसों में बहता है,
फूल उसकी नजरों में खिलते हैं,
और चिड़ियों के गीत
उसके प्राणों में बजते हैं!
लेकिन, कहते हैं कि
प्यार—
प्यार एक परछाईं की तरह आता है—
वह जीवन और जवानी पर छा जाता है—
वह दुनिया से दुनिया को मिटा देता है—
यदि स्थिति यह है,
यदि प्यार ऐसा है,
तो क्यों ऐसे कोहरे की खोज करो
जो तुम्हारे सारे अस्तित्व को धुंधला दे!



बन्धन? सचमुच ही हमारे अन्तर का यह प्यार और यह आशा
सचमुच ही यह बन्धन है।
और, प्यार और आशा के यह बन्धन माँ के उन हाथों की तरह हैं
जो शिशु को सीने से कसे रहते हैं
कि शिशु स्नेह और वात्सल्य से बस जाये।
प्यास? हाँ, प्यास ही तो जीवन को जीवन के
आनन्द के प्रत्येक उद्गम तक पहुँचाती है—
और, यह आनन्द चिरन्तन माँ के
दूध में घुला रहता है, जैसे!
भला कौन है जो शिशु से उसकी यह
प्यास छीन ले!
शिशु की यह प्यास ही है
कि उसमें जीवन उगता है, जीवन पनपता है;
और, माँ उसे चारों ओर से
घेरे रहती है

कि वह माँ की बाँहों के
यह सारे बन्धन तोड़ डालता है—
शिशु की प्यास....





हम दोनों सपनों की गोधूली में डूबे पड़े रहे हैं

कि जागरण का समय आ गया है
और वह समय आ गया है
जब तुम आखिरी बात कहोगे—
देखो, अपना चेहरा इधर करो,
और आँसू से धुंधली निगाहों से
विछोह के सन्ताप को
सदा के लिए सुन्दर बना दो !
जल्दी ही सुबह होगी,
और अकेलेपन के आसमान पर
दूर, बहुत दूर पर एक सितारा टिमटिमायेगा—
विदा की यह पीड़ा
मैंने अपनी वीणा की तारों में बाँध ली है,
 वन्दी बना ली है।
इस तरह प्यार की खोई हुई गरिमा

मेरे सपनों में सदा-सदा बुनी रहेगी—
तो, हमारी विदा के अन्तिम क्षण हैं,
खोलो, स्वयं अपने हाथ से
    द्वार खोलो...:
    खोलो !





मैंने जो गीत तुम्हारे लिए उलीचे
तुमने उन्हें अंजुलि-अंजुलि कर पिया,
और उनसे अपनी प्यास बुझाई—
तुमने मेरा सपनों से बुना हार स्वीकार किया—
मेरा हृदय एकाकीपन से ऊब कर
सदा एक अजब से दर्द से सिहर उठा,
और मुझे सदा लगा
कि वह दर्द मुझे ऐसे छू रहा है
जैसे तुम !

जब मेरे दिन पूरे हो जायेंगे
और मेरा अवकाश का समय
अन्तिम शान्ति बन जायेगा,
उस समय मेरी आवाज़
पतझर के प्रकाश में

और पानी से भरे बादल में ऐसे लरजेगी
कि उससे केवल एक सन्देश उभरेगा—
हाँ, हम मिले थे—
हाँ, हम दोनों कभी मिले थे !





मैंने अपना हृदय संसार के बीच फेंक दिया—

तुमने मेरा हृदय उठा लिया—
मैंने सुख की खोज की और दुख का संचय किया—
परन्तु, तुमने, मुझे दुख दिया और
मैंने सुख पाया !
मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया—
तुमने वे टुकड़े उठा लिये और उन्हें
प्यार के एक तागे में पिरो दिया—
तुमने मुझे दर-दर भटकाया कि
अन्ततः मैं यह जान सकूँ कि मै
तुम्हारे कितने समीप हूँ !
तुम्हारे प्यार ने मुझे गहरे संकट में
डाल दिया;
परन्तु, जब मैंने शीश उठाया
तो मैंने देखा
कि मै तुम्हारे द्वार पर हूँ !



वह आता है—

एक तलवार उसके दायें हाथ में होती है
और एक फूल उसके बायें हाथ में—
वह दरवाज़े तोड़कर आता है—
वह भीख माँगने
और याचना करने नहीं आता,
बल्कि वह लड़ने और लड़कर जीतने आता है—
वह तुम्हारे दरवाज़े तोड़ डालता है,
वह तुम्हारे दरवाज़े तोड़ कर आता है—
वह मौत के रास्ते से
तुम्हारे जीवन में आता है—
वह तुम्हारे सब-कुछ पर अधिकार कर लेता है;
और, उसके अंश-मात्र से
सन्तुष्ट नहीं होता—
वह आता है,
और तुम्हारे दरवाज़े तोड़ कर आता है !



मेरे प्यार की बात

वसन्त के फूलों तक पहुँच गयी है—
ऐसे में मुझे अपने पुराने गीत
याद आ रहे हैं—
मेरे अन्तर में रहे-रहे
कामना के कमनीय किसलय उग आये हैं—
मेरी प्रीति मेरे समीप नहीं आई,
परन्तु, उसका स्पर्श है कि
मेरे वालों को छू रहा है;
और, उसकी आवाज;
अप्रेल के महीने की फुसफुसाहटों में,
महमह करते हुए खेतों पर से लहराती हुई
उस पार से इस पार चली आ रही है—
उसकी दृष्टि आकाश में है;
परन्तु, उसके नेत्र दिखलाई नहीं पड़ते—

वे कहाँ हैं?
उसके चुम्बन हवा में हैं
परन्तु उसके अधर दीख नहीं पड़ते—,
वे कैसे हैं?





छुट्टी के दिन के संगीत से भारी

बाँसुरी का स्वर हवा में तैर रहा है—
यह समय न मेरे बैठे रहने का है
और न सोच-विचार में पड़ कर अकेले रहने का—
शिउली की शाखें रोमांच से सिहर-सिहर उठती हैं
कि फूलने का समय आ गया है—
सारे वन-प्रान्तर पर ओस का स्पर्श है—

जंगल के रास्ते में, परियों के एक जाले पर
प्रकाश और छाया एक-दूसरे को कस रहे हैं—
ऊँची घास लहराती है कि हँसी की लहरें
आसमान के फूलों तक पहुँच जाती हैं;
और,
ऐसे में
मैं अन्तरिक्ष पर दृष्टि गड़ा कर
अपने गीत की खोज करता हूँ!



अन्धकार

अँधकार

रात मुझ पर घिर रही है—

शाम की शान्त हवा में समुद्र की
फुसफुसाहट की तरह
मेरी कामनाएँ
दिन भर जहाँ-तहाँ भटकने के बाद
मेरे अन्तर में वापस आ गयी हैं—
अन्धकार है—
और इस अन्धकार में
एक अकेला दीपक मेरी कुटिया में जल रहा है—
नीरवता मेरे रक्त में है—
मैं अपनी पलकें बन्द करता हूँ
और,
अपने अन्तरतम में
उस सौन्दर्य के दर्शन करता हूँ।
जो सारे रूपों और सारे आकारों से परे है!



जो मेरे पास हैं

वे यह नहीं जानते
कि उनसे कहीं अधिक
तुम मेरे समीप हो !

जो मुझ से बातें करते हैं
वे यह नहीं जानते
कि तुम्हारे अनबोले शब्दों से
मेरा हृदय भरपूर है !

जो मेरी राह में भीड़ लगाते हैं
वे यह नहीं जानते
कि मैं तुम्हारे साथ अकेले चल रहा हूँ !

जो मुझे प्यार करते हैं,
वे यह नहीं जानते
कि उनका प्यार
तुम्हें मेरे अन्तर तक ले आता है !



मेरे साथी,

मैं जानता हूँ कि हम दो हैं, एक नहीं हैं—
तो भी, मेरा मस्तिष्क
यह बात स्वीकार करने से इन्कार करता है,
क्योंकि हम दोनों साथ-साथ
एक ऐसी रात में जागे,
जिस रात कोई नहीं सोया—
याद है—
चिड़ियाँ गीत गाती रहीं
और, वसन्त के एक ही लहरे ने
हमारे हृदयों में प्रवेश किया—
मेरे साथी,
यद्यपि तुम्हारा चेहरा अन्धकार की ओर है,
और मेरा प्रकाश की ओर,
तो भी हमारा रहस्यमय सम्मिलन
बड़ा मधुर है,



क्योंकि तरुणाई की बाढ़ ने
अपनी भँवरों के नाच से
हमें
एक दूसरे के
बहुत समीप ला दिया है !



रूपनारायण के तट पर

मैं आँखें खोलता हूँ, जागता हूँ,
और,
अनुभव करता हूँ कि यह दुनिया सत्य है,
 सपना नहीं है—
मैंने देखा है कि रक्त के वर्णों से
मेरे व्यक्तित्व के शब्द लिखे गये हैं,
मेरा व्यक्तित्व उभरा है,
और,
मेरे व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है—
वार-वार की चोटों
और पीड़ाओं के बीच से
मैंने अपने आपको पहिचाना है—
यह कटु सत्य है
कि मैंने कटुता को प्यार किया है—



कटुता धोखा कभी नहीं देती—
यह जीवन यातना की एक साधना है—
यह यातना जन्म से मृत्यु तक चलती है—
इस तरह तपस्या कर
मनुष्य सत्य का भयानक महत्त्व समझता है,
और,
अपना सारा ऋण
मृत्यु के रूप में अदा करता है !



सारा रोना-कल्पना निष्फल है,

और यह कामना की धधकती हुई
आग भी व्यर्थ है—
सूर्य के विश्राम के क्षण हैं,
सूर्य अस्त हो रहा है—
जंगल में उदासी है और आसमान में जादू—
नीची नज़रों और लड़खड़ाते हुए क़दमों से
शाम का सितारा आसमान में आता है—
दिन की विदा के क्षण हैं—
गोधूली विछुड़न के दर्द से भरकर
लम्बी और गहरी साँस लेती है—
जैसे मुँह से आह-सी निकल जाती है—
मैं तुम्हारे हाथ अपने हाथों में लेता हूँ,
और
अपनी भूखी आँखों से तुम्हारी आँखें



कस लेता हूँ—

मैं बराबर तुम्हारी खोज करता हूँ,
और तुम्हें आवाजें देता हूँ—
कहाँ हो, अरे तुम कहाँ हो?
तुम्हारे अन्तर की गहराइयों में
छिपी अमर-ज्योति
कहाँ है?
जैसे साँझ के साँवले, गहरे आसमान के
एक अकेले सितारे में
स्वर्ग की किरन
अपने विराट-रहस्यमय रूप में
हिल-हिल उठती है,
उसी तरह तुम्हारी आँखों की गहराई में
विराट-रहस्य से भरकर
आत्मा की एक किरन लहरें लेती है—
मैं अवाक् हो उठता हूँ—
मेरी निगाहें उस पर जम जाती हैं—
मैं अनन्त कामना की गहनता से,
अपने पूरे हृदय से,
उसमें डूब जाता हूँ—
मैं आत्म-विस्मृत हो उठता हूँ,
और अपने को खो देता हूँ!



हां, कभी मुझे भ्रान्तियों और

ग़लतफ़हमियों से मोह था—
परन्तु, आज मैं उनसे छुटकारा पा चुका हूँ—
सच है कि कभी मैंने आशाओं
के रास्ते की खोज की
और मैं कांटों पर चला;
परन्तु, अन्त में मैंने अनुभव किया कि
कांटे फूल नहीं हैं !

ख़ैर,
अब मैं प्यार को नगण्य कभी न मानूंगा,
और हृदय के साथ खेल कभी नहीं करूँगा—
मैं अब
अशान्त, अस्थिर और चंचल सागर के
कूल-किनारे पर
तुम्हारे अन्तर में शरण ग्रहण करूँगा !



आओ, मित्र, आओ !

इस कठिन श्रम के वन्धन से
मुझे कौन मुक्त कर सकता है !
भला बताओ तो,
सारे तीर्थ-यात्री अपने सपनों की मंजिल
की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं कि मैं पीछे
रह गया हूँ

मित्र, आओ, ऐसे में आओ,
और, अचानक आ-गयी नदी की उस बाढ़ की तरह आओ
जो अपने
सारे अर्पण और समर्पण के साथ
समुद्र की ओर बढ़ती है—
मेरा बोझ मुझे नीचे की ओर खींच रहा है—
तुम मुझे मेरे बोझ से अलग बहा ले चलो !



तुम—

गरमी के पूनों की चाँद की तरह
तुम मेरे अन्तर के मौन में निवास करोगे—
तुम्हारी उदास आँखें
मेरी गतिविधि पर पूरी-पूरी निगाह रक्खेंगी—
तुम्हारे आवरण की छाया
मेरे हृदय पर विश्राम करेगी—
गरमी की पूनो के चाँद की तरह
तुम्हारी साँसें मेरे सपनों के चारों ओर
मँडरायेंगी
और,
मेरे सपनों के होठों पर
महक की मुस्कानें सजा देंगी !



मै जानता हूँ कि मेरा फूल एक दिन खिलेगा

और काँटों का राजमुकुट बनकर खिलेगा—
मै जानता हूँ कि मेरा संताप अपनी लाल-
गुलाबी पत्तियाँ फैलाकर सूरज के
सामने अपना हृदय खोलकर रख देगा—
आसमान दक्षिणी पवन के लिये
कितने-कितने दिन और कितनी-कितनी
रातों तक प्रतीक्षा करते-करते थक गया है—
किन्तु,
वही दक्षिणी-पवन सहसा ही बहेगा और
मेरा अन्तर हिल उठेगा;
मेरा प्यार एक क्षण में ही खिल उठेगा ।
और फूल खिलेगा और पक कर अर्पण के लिये गहरायेगा
कि मेरी लज्जा सदा-सदा के
लिये मिट जायेगी—



तुम्हारे गीतों से लपटें निकलती हैं

कि मेरा हृदय जैसे आग के ऊपर रक्खा हुआ है;
आग फैलती है कि फैलती ही जाती है—
फैलती ही आती है कि कहीं हाय ही नहीं आती—
आग आसमान में अपने हाथ नचा-नचाकर
नग्न-नृत्य करती है
और मुर्दों और
सड़े-गलों को जला कर राख कर
डालती है—
आसमान के उस पार के सितारे इस
आग को देखते हैं
और,
जैसे नशे में चूर हवायें हर दिशा से आती हैं
और आग और भड़का देती हैं—
ओह! लाल-कमल की तरह यह आग खिलती है और
आधी रात के घनांधकार में
अपनी पाँखुरियाँ बिखेर देती है!

मैं सोकर उठता हूँ
और देखता हूँ कि नारंगियों से भरी
एक कंडिया मेरे पैरों के पास रक्खी है—
मैं अचरज से भर उठता हूँ
और सोच नहीं पाता कि यह भेंट
किसकी हो सकती है !
मैं अनुमान का सहारा लेता हूँ
और
एक के बाद एक नाम मेरे सामने
आते जाते हैं—
परन्तु इन में मधुर
नाम वैसे ही छूट जाते हैं जैसे कि
वसंत के दिनों में फगुनहटी बहने
पर भी वसंत के फूल—
मुझे उन



मधुर नामों का ध्यान ही नहीं आता—
और, अन्त में
होता यह है कि
अलग-अलग सारे नाम एक हो जाते हैं
और भेंट को पूर्णता प्रदान करने लगते हैं—
नारंगियों के रंग लौ दे उठते हैं जैसे !



वह मेरे लिये

अपनी मुस्कान का फूल छोड़ गई
और मेरी पीड़ा का फल
अपने साथ लेती गई—
उसने खुशी से तालियाँ बजाईं
और कहा—
मैं जीत गई।

दोपहर आई—
दोपहर की आँखें पागलों-सी थीं—
आग की प्यास
क्रोध से आकाश में उबल पड़ी—
मैंने अपनी डोलची खोली—
मैंने देखा
कि
फूल मर गया!



जीव की नवीन प्राण-प्रतिष्ठा हुई—

पहिले दिवस के सूर्य ने जीव से प्रश्न किया—
तुम कौन हो ?
जीव चुप रहा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया!

वर्ष पर वर्ष बीतते गये—
अब भी,
संध्या की शान्ति पर हथेली टेककर
सागर के पश्चिमी तट पर झुककर
दिवस का अंतिम सूर्य
अंतिम प्रश्न करता है—
तुम कौन हो ?
जीव है कि अब भी चुप रहता है,
और सूर्य है कि
अब भी
कोई उत्तर नहीं पाता!



वे तुम्हें पागल कहते हैं—

तुम कल की प्रतीक्षा करो,
और शान्त रहो !

वे तुम्हारे ऊपर धूल उछालते हैं—
तुम कल की प्रतीक्षा करो—
वे अपने फूलों का आदर
तुम्हारे पास लायेंगे !
वे अभिमान से,
ऊँचे-ऊँचे आसनों पर
अकेले में बैठते हैं—
तुम कल की प्रतीक्षा करो—
वे नीचे उतरेंगे
और
अपना शीश झुकायेंगे !



तुम कल की प्रतीक्षा करो,
ओर,
शान्त रहो!



तुमने सारी रात प्रतीक्षा की पलकों में अकेले

काट दी है—
तुम्हारी आँखें राह देखते-देखते थक गई हैं,
मधुरे!

दीपक की लौ मंद और पीली पड़ चली है
और समीर के झोंकों में झिलमिला रही है—
पतझर की सुबह है
शान्त और स्थिर—
जंगलों की महक हवा में बोल रही है,
और,
किसी के दुलार से जैसे घासों भरे रास्ते
कोमल हो उठे हैं—
ऐसे में आँसू पोंछो;
चादर खसकाकर



वक्ष तक उलट दो और उठो—
एकाकिनी रात की श्रद्धांजलि की पुष्पमाला
बिस्तर पर मुरझी की मुरझी रहने दो—
छोड़ दो—

उठो और बाहर निकलकर सुबह की दुनिया
में क़दम रक्खो,
अपने आँचल में ताज़े फूल इकट्ठा करो,
और
नई-नई कलियों से अपने केश सजा लो!



तुम्हारा वैभव अनन्त है,

परन्तु
तुम एक अकिंचन की कुछ नहीं-सी
भेंट भी मेरे द्वारा, मेरे नन्हे-नन्हे
हाथों से ग्रहण करना चाहते हो—
यही कारण है कि तुमने मुझे
अपनी वैभव-श्री से समृद्ध और सम्पन्न किया है,
और तुम मेरे द्वार पर आये हो,
यद्यपि मेरा
द्वार बंद है !

माना कि तुम्हारा रथ तुम्हें लेकर विचारों से
अधिक तीव्र गति से दौड़ेगा,
परन्तु तुम्हारी तो कामना है कि
तुम अपने रथ से नीचे उतर आओ



और धूल-भरी धरती पर
मेरे साथ
क़दम से क़दम
मिला कर चलो !



मित्र, आओ, हिचको नहीं,

नीचे उतरो और कड़ी धरती पर क़दम रक्खो—
साँझ के धुँधलके में सपने इकट्ठा करो—
आसमान में तूफ़ान उबल रहे हैं—
बिजली के कौंधे हमारी नींद पर
चोटें कर रहे हैं—
आओ, नीचे सामान्य जीवन में उतरो !

प्रेम था कि मकड़ी का जाला था
जो टूट गया है—
अब अनगढ़ पत्थरों की दीवारों के पीछे
शरण ग्रहण करो—
आओ,
मित्र, आओ !!

४



मैं यह मानता हूँ कि हमारा दारिद्र्य अमित है
और हमारी लज्जा गहन;
परन्तु, इस पर भी मैं
यह नहीं मान सकता कि हमने तुम्हें खो दिया है
और
तुमने हमें त्याग दिया है!
तुम्हारी इच्छा-शक्ति निराशा के पर्दे के पीछे कार्य करती
और तुम्हारे सामने ही असम्भव का
राज-द्वार खोल देती है!
मकान का बड़ा कक्ष अस्त-व्यस्त पड़ा रहता है कि
अयाचित ही एक अप्रत्याशित दिन तुम इस
बड़े कमरे में आते हो और इस तरह आते हो
जैसे कि यह तुम्हारा ही घर हो,
और तुम अपने ही
घर में आये हो—

तुम्हारे स्पर्श-मात्र से आसमान के सारे अँधेरे खंडहर
एक ऐसी कली में बदल जाते हैं
जो अपने अन्तर में
उगती हुई तृप्ति को दुलार और प्यार से
पालती है
कि वह फूल बन सके, फल दे सके !
यही कारण है कि मैं अभी निराश नहीं हुआ हूँ,
और मुझे अब भी आशा है
कि सारा टूटा-फूटा
और अव्यवस्थित भले ही न सुधरे और भले ही व्यवस्थित न हो,
परन्तु एक नई दुनिया है जो
इस तरह उगेगी उभरेगी, ऊपर उठेगी।





बन्धुओ, अभिमानी और शक्तिशाली के
सामने अपनी सादगी और सरलता
के लिबास में खड़े होने में
लज्जा का अनुभव न करो—
विनम्रता तुम्हारा ताज हो
और
आत्मा की आज़ादी तुम्हारी आज़ादी !
अपनी निर्धन-दरिद्रता की विपुल
नग्नता पर नित्य-प्रति ईश्वर
के सिंहासन का निर्माण करो,
और, याद रक्खो कि
हर विराट् वस्तु महान नहीं होती
और
अभिमान कभी अजर-अमर नहीं होता ! !

माँ, तुम मुझसे पूछती हो—

तुम्हारी सब से अधिक जाने की इच्छा कहाँ है ?
मैं बता दूं, मैं वहाँ जाना चाहता हूँ जहाँ से मैं आया हूँ—
परन्तु स्थान विशेष तो याद मुझे किसी तरह आता ही नहीं—
मैं चेष्टा करता हूँ कि मुझे उस स्थान का
अता-पता मिले !
पिता जी मेरी उलझन पर मुस्कराते हैं
और
कहते हैं कि वह स्थान साँझ-तारों के देश में
बादलों के पीछे है !
किन्तु, तुम्हारी बातों से लगता है कि वह स्थान
गहरी धरती के अन्तर में स्थित है
और वहीं से
फूल सूरज की खोज करते हुये भागकर यहाँ
आते हैं !



चाची का कहना है कि वह स्थान किसी का देखा
नहीं है,
वह समुद्र के तल में है और वहाँ
सारे बहुमूल्य हीरे-जवाहिरात छिपे पड़े है,
संचित हैं !
भाई साहब मेरे बाल खींचते है और
मुझे डाटते हैं—तुम अजब मूर्ख हो;
वह
स्थान तुम्हें कहाँ मिलेगा !
वह तो हवा में
घुलामिला है !

माँ, मैं तुम सब लोगों की यह सारी बातें
सुनता हूँ,
और मुझे लगता है कि वह स्थान अवश्य ही है और हर
जगह है—
केवल मेरे स्कूल के मास्टर जी ही
ऐसे हैं
जो सिर हिला कर
कहते हैं कि वह कहीं नहीं है,
वह स्थान कहीं नहीं है !!!



एक जमाने में अपने शासकों के नाम पर

ईश्वर को भी ठुकरा देने वाले लोग
एक बार फिर इस युग में पैदा हो गये हैं—

वे पूजा-अर्चा के पवित्र वेश में
प्रार्थना-भवन में एकत्रित होते हैं,
अपने सिपाहियों को बुलाते हैं,
और तेज स्वरों में चिल्लाते हैं—
मारो, मारो, मारो-काटो—
काटो मारो !
प्रार्थना-गीतों का संगीत उनकी
गरज में घुल-घुट और डूब
जाता है !
दूसरी ओर परमपिता का बेटा
उस स्थिति से संतप्त होकर



ईश्वर से प्रार्थना करता है—
प्रभु, फेंक दो, दूर फेंक दो—
कटुतम विषों से लबालब
यह प्याला दूर फेंक दो—
ऐसे में अब जिया नहीं जाता ! !



हजार वर्ष का पर्दा

मेरे और
तुम्हारे बीच गिर गया
कि तुमने मेरी ओर से मुँह मोड़ लिया
और तुम उस अतीत में खो गये
जिसमें भयाकुल सन्देह की गोधूली में
अपने प्यार के पथ से भटक गये
प्रेत जैसे प्राणी बसते हैं।
हमारे बीच की विभाजन-रेखा
बहुत ही साधारण और सकरी हैं
एक प्याले-सा निर्झर
हमारे विदा के क्षणों की स्मृति और
तुम्हारे रुकते-बढ़ते क़दमों
की करुणा अपनी लहरियों के मर्मर
में बुन रहा है—



और, ऐसे में मै तुम्हें जो कुछ भी भेंट कर सकता हूँ
वह है एक अनबोले प्यार का संगीत !
यह संगीत तुम्हारा पीछा करेगा,
और, फिर पंख लगाकर हवा में उड़ जायगा ! !



सौन्दर्य की सरिता में लहरें लेनेवाले रंग
अपनी आँखों में भरो—
उन रंगों को पकड़ने के लिये संघर्ष न करो—
श्रम व्यर्थ जायेगा—
अपनी कामना से तुम जिसका पीछा करते हो
वह परछाईं है,
और जो तुम्हारे प्राण-तन्त्रों को रोमांच से
भर देता है वह संगीत है—
जिस सुरा का देव-सभा में पान किया जाता है
उसका न कोई पात्र है
और न कोई माप—
वह मदिरा झरनों के तेज़ बहाव में है,
फूलते हुये पेड़ों के खिलाव में है,
और,



नाचती हुई मुस्कान में है—
तुम उस कदम्ब का स्वतन्त्रता से
उपभोग करो,
और आनन्द लो !



तुमने बहुत अच्छा किया

कि मैं भीख
माँगता आया तो तुमने मुझे वापस लौटा दिया—
तुमसे विदा होते समय मैंने
तुम्हारी निगाह में एक मुस्कान देखी और
उससे मैंने एक पाठ ग्रहण किया—
मैंने अपना पुराना भिक्षा-पात्र तोड़ दिया—
अब मैं एक सुयोग की टोह में हूँ
कि मैं अपना सब-कुछ भी किसी को दे
सकूँ।

सवेरे से ही तुम्हारे द्वार पर भीड़ जमा हो गई है—
तुम उन सबको मुँहमाँगा वरदान दो—
उन सबकी झोली भर दो—
लेकिन, देखो, रात भीगने पर जब



सब चले जायेंगे
और उनकी चीख-पुकारें
शून्य में खो जायेंगी,
जब सितारे अपने
जन्म के पहले के युग का महाकाव्य सुनने-से लगेंगे
कि कैसे उस युग
में नवजात-प्रकाश ने प्राचीन अंधकार
से संघर्ष लिया,
उस समय में अपनी कामना की
श्रद्धांजलियाँ लेकर तुम्हारे चरणों में
आऊँगा—
प्रभु, उस समय तुम
मेरी वीणा
अपने हाथ में ले लेना और एक बार
उसे झंकृत कर देना. . . प्रभु—
हे मेरे प्रभु—



गूंगी धरती मुझे देखती है और बाहों से
घेर लेती है—
रात के सितारे उँगलियों से मेरे सपनों को
छेड़ते हैं—
वे मेरा पिछला नाम जानते हैं
वे आपस में फुसफुसा कर मुझे बहुत दिनों
पहिले की एक लोरी की याद
दिलाते हैं,
और मेरे दिमाग़ में एक चेहरे
की वह मुस्कान ताज़ी हो उठती है जो पहिली
उषा के प्रकाश की पहिली रेखा में
मैंने देखी थी !
मैं अनुभव करता हूँ कि धरती के कण-कण
में प्यार है
और आसमान के हर फैलाव



में आनंद !
इस समय मुझे चिन्ता नहीं कि मैं
धूल हो जाऊँगा,
क्योंकि धूल उसके
चरण-स्पर्श से पवित्र और पावन है—
मुझे चिन्ता नहीं कि मैं फूल हो
जाऊँगा,
क्योंकि फूल को तो वह अपने हाथों
में उठा लेता है—
वह समुद्र में है,
वह समुद्र के
किनारे पर है,
वह सबको ले जाने वाले
जहाज़ के साथ है—
मैं जो कुछ भी हूं,
मैं मानता हूँ कि
मैं धन्य हूं
और,
प्यारी धूल से भरी
मेरी यह धरती भी धन्य है !
सचमुच धन्य है !!



मैं धन्य हूँ कि मैंने इस धरती पर जन्म लिया है

और मुझे इस धरती को प्यार करने का
सौभाग्य प्राप्त हुआ है—
मुझे चिन्ता नहीं कि मेरी इस धरती के पास
राजसी मालखजाने नहीं हैं—
मेरे लिये
तो इसका सजीव और जीवन्त-वैभव ही
बहुत है!

मेरी धरती के फूल मुझे सुगंधि की
सर्वोत्तम भेंट भेंट करते हैं,
और, मुझे
पता नहीं है कि मेरी धरती के ऊपर के
चाँद की तरह कहीं और भी ऐसा ही
चाँद उगता है;

५



जो मेरे व्यक्तित्व
को इतने सौन्दर्य से भर दे।

प्रकाश की पहिली किरन इसी धरती के
ऊपर के आसमान से मेरी अँखड़ियों पर उतरी—
और, मेरी आकांक्षा और अभिलाषा है
कि मेरी आँखें सदा-सदा के लिये बंद हों तो ज़रा पहिले
वही
प्रकाश की किरन एक बार फिर
मेरी पलकियों को चूम ले॥



स्वप्नद्रष्टा, माना कि वह रात को तुम्हारे
रास्ते से अकेले गुज़रता है,
पर, तुम
उसे अपने घर बुलाना कभी नहीं!
वह अजीब देश की बोली बोलता है,
और एक विचित्र सी तान
अपने एकतारे पर छेड़ता है—
कोई आवश्यक नहीं कि तुम
उसके लिये आसन बिछाओ—
वह तो मुंह अँधेरे ही चला जायेगा—
तुम्हें पता है,
आज़ादी के
उपलक्ष्य में आयोजित
प्रीतिभोज में उसे बुलाया गया है,
और विशेष आदेश दिया गया है कि



उस प्रीतिभोज में वह
नवजात-प्रकाश का
अभिनन्दन
और गुण - वन्दन करे!!



छोड़ो यह पूजा-पाठ,
भाव-भजन और
यह माला-जाप—
आखें खोलो—
तुम्हारी आस्था भ्रामक है—
तुम्हारा
भगवान तुम्हारे सामने नहीं है—
तुम्हारा भगवान इस समय वहाँ है
जहाँ जमीन जोतने-गोड़ने-बोनेवाला
किसान कड़ी जमीन तोड़ रहा है,
और
जहाँ सड़क बनानेवाला मजदूर
सड़क पर पत्थर कूट रहा है—
तुम्हारा भगवान
कड़ी धूप और घनघोर



बादल-पानी में उस मजदूर
के साथ रहता है—
तुम्हारे भगवान
के कपड़े धूल से भर गये हैं।

देखो, अपनी रामनामी उतारो;
और, अपने भगवान की भाँति ही
धूल-भरी धरती पर उतर आओ—
अपनी पूजा-अर्चा के फूल और
धूप-कपूर एक किनारे करो,
और
इस जोग-तप, ज्ञान-ध्यान के
बाहर आओ—इससे ऊपर उठो!

तुम्हारे कपड़े मीज उठते
और दाग-दगीले हो उठते हों तो हो जायें,
हानि ही क्या है! —
तुम अपने भगवान के दर्शन करो;
कड़े परिश्रम में अपने
भगवान का साथ दो;
उसके साथ खड़े हो;
और,
अपनी भौंहों से चूनेवाले जीतोड़ मेहनत के
पसीने में अपने भगवान
से मिलो और
उससे एकात्म लाभ करो!!



काले-गहरे बादलों ने ऊपर के सारे
प्रकाश सोख लिये हैं
और हम,
वंदी-पंछी
तुमसे चीख-चीख कर
पूछते हैं कि क्या सृष्टि का मृत्यु-क्षण
आ गया है? क्या ईश्वर ने आकाश
से अपने सारे आशीर्वाद वापस ले
लिये हैं?

एक समय था जब मधुमास की
सांस
आशा के दूर के सौरभ से
हमारे हृदय लहरा-लहरा देती थी;
जब उषा की पहली किरनें



हमारे कारागार की लोहे की
सलाखों को सोने से मढ़ देती थीं,
और, बाहर के उन्मुक्त—
जगत का उल्लास हमारे पास तक
ले आती थीं—
लेकिन, देखो, आज, इस समय यहाँ से
दूर वहाँ तक की पहाड़ियों में अंधकार ही
अंधकार है,
और प्रकाश की कटार तम-तोम
काटकर एक पतले से पतला दरार भी
नहीं बना सकती।

हमारी बेड़ियाँ आज और भी मन-मन की हो उठी हैं,
और आकाश में ज्योति की एक भी लाल-लहर बाक़ी नहीं है
कि हम आनन्द का एक दिव्य-स्वप्न बना और बुन सकें!
लेकिन, मित्र, तुम हमारे भय और संताप से पीड़ित न हो;
न ही तुम यहाँ आकर बंदी-गृह के द्वार पर बैठो,
और हमारे साथ आँसू बहाओ—
तुम हमसे बहुत दूर उड़ जाओ, बहुत दूर—
और, फिर उड़ते जाओ, उड़ते जाओ
ऊपर, बहुत ऊपर, सारे बादलों के पार, उस पार—
और, फिर वहाँ से अपने
गीत में भरकर हमारे लिये संदेश भेजो कि
प्रकाश सदा-सदा लौ देता रहेगा
और
सूरज का प्रकाश-दीप अभी बुझा नहीं है!!



मानव के संकटपूर्ण इतिहास के बीच से
विनाश का एक अंध-आक्रोश सब कुछ
को बहाता चला जा रहा है—
सभ्यता के मीनार उखड़कर गिरे जा रहे
और
धूल में मिले जा रहे हैं—
नैतिक-क्रान्ति के हो-हल्ले में लुटेरे उपद्रवी
मनुष्य के उस सारे वैभव
को अपने पैरों तले रौंदे डाल रहे हैं
जो शहीदों ने युग-युगों
में जीता और अर्जित किया है—
ऐसे में, आओ,
दुनिया के तरुण राष्ट्रो,
आगे आओ—
स्वतन्त्रता के संग्राम की उद्घोषणा करो,



और अजेय आस्था का झंडा ऊँचा करो—
घृणा के विस्फोट से धरती यहाँ-वहाँ
फट गई है—
धरती के इस पार से उस पार तक तुम
अपने जीवन से पुल बनाओ
और आगे बढ़ो—
भय की ठोकर खाकर अपने शीश पर
अपमान का बोझ ढोना स्वीकार
न करो—
अपने पराजित और अपमानित पौरुष
को शरण देने के लिये झूठ और
चालाकी की खाई न खोदो—
और,
अपनी रक्षा के लिये
दुर्बल को शक्तिशाली की बलि न
चढ़ा दो।



सूरज चमकता है,

फुहारें पड़ती हैं,
बाँसों के झुरमुट में
पत्तियाँ चमक-चमक उठती हैं,
और नई-नई गोड़ी गई धरती की महक से
वातावरण मह-मह कर उठता है !

ऐसे में हमारे हाथ मज़बूत हैं और हमारे हृदय प्रसन्न
कि हम सवेरे से रात तक
जीतोड़ परिश्रम कर अपने खेत जोतते और
बोते हैं—

कवि की आत्मा लहराते हुये स्वरों के नियमित
उतार-चढ़ाव में चरागाहों के किनारे-किनारे
नृत्य करती है;
हरी-हरी पत्तियों में



अपनी पद्य रचना करती है,

और,
पकते हुये धान के खेतों के बीच
रोमांच की लहरियाँ बिखेर देती है—

ऐसे में क्वार की चिलचिलाती दोपहरी में
और पूर्णिमा की बादलों से मुक्त रातों में
धरती का आह्लाद
और प्रसन्नता से भर-भर उठता है
कि
सवेरे से रात तक जीतोड़ परिश्रम कर
हम अपने खेत जोतते और बोते हैं!!



मेरे प्रभु—

मेरे देश की धरती,
मेरे देश का जल,
मेरे देश की वायु
और मेरे देश के फल मधुर हों!

मेरे प्रभु,
मेरे देश का घर-घर
मेरे देश की हाट-हाट,
मेरे देश का जंगल-जंगल
और मेरे देश के खेत भरे-पूरे हों।

मेरे प्रभु,
मेरे देश के वचन,
मेरे देश की आशायें,

मेरे देश के कृत्य
और मेरे देश की वाणी सत्य हो !



मेरे प्रभु,
मेरे देश के बेटों
और
मेर देश की बेटियों
के जीवन और अन्तर
एक हों !
मेरे प्रभु,
हे मेरे प्रभु !!

और,
अपनी भौंहों से चूनेवाले
जीतोड़ मेहनत के
पसीने में अपने
भगवान से मिलो;
और,
उससे एकात्म काम करो!

....

गीत में भर कर हमारे किये संदेश भेजो कि
प्रकाश सदा-सदा को देता रहेगा,
और
सूरज का प्रकाश-दीप अभी बुझा नहीं है !!